भीतर-भीतर आग

शान्ति सुमन

भीतर-भीतर आग

शान्ति सुमन

समीक्षा प्रकाशन
मुजफ्फरपुर/दिल्ली

ISBN - 81-87855-57-7

प्रथम संस्करण	:	2002
सर्वाधिकार ©	:	शान्ति सुमन
प्रकाशक	:	**समीक्षा प्रकाशन**
कार्यालय	:	● जे.के. मार्केट, छोटी कल्याणी मुजफ्फरपुर – 842 001
		● 403, छाबड़ा कम्पलेक्स, 8, वीर सावरकर ब्लॉक शकरपुर, दिल्ली–92 दूरभाष : 2416191 मोबाइल : 9818065583
मुद्रक	:	**बी०के० ऑफसेट, दिल्ली।**
मूल्य	:	120/-

Bhitar Bhitar Aag
by. Shanti Suman
Rs. 120.00

अरविन्द
और
विशाखा को

गीत के संदर्भ में

आज इस बात को समझने की बड़ी जरूरत है कि यह समय गीतकारों के लिए आत्म साक्षात्कार का समय है। गीत को अत्याधुनिक सांचे में ढालने के लिए उनका सचिन्त रहना स्वाभाविक है, पर सचेत रहना उनके लिए आवश्यक है कि वे कहीं जीवनानुभवों को अभिव्यक्त करने की जगह गीतों को बुनियादी सरोकार से ही तो अलग नहीं करने लगे हैं। आज उदारीकरण और विश्व बाजारवाद के कारण जीवन के हर क्षेत्र में जो सरलीकरण आने लगा है, गीत का उससे प्रभावित होना आकस्मिक नहीं है। इसलिए गीतकारों को अपने अनुभवों में बार-बार प्रवेश करने की आवश्यकता है। ये वही अनुभव हैं जो उनके गीतों को सार्थकता देते हैं। उनके गीतों के रचना-लोक को अपेक्षित विस्तार भी देते हैं। इससे उनके गीतों के शिल्प पक्ष की भी रक्षा होती है।

गीतों में बहुत कुछ समेटने का जब अधैर्य होने लगता है और सब कुछ पर छन्द जोड़ लेने की जल्दबाजी होती है तो गीतों के चलताऊ होने का खतरा बढ़ जाता है। अंततः गीत पूरे फार्म के बावजूद अनुपस्थित होने लगता है। गीतकार जहाँ इन चीजों से बचते हैं, अपने अनुभवों के अतल में जाते हैं, स्वाभाविक सृजन-प्रक्रिया से गुजरते हैं, उनके गीतों में तभी प्रामाणिक ऊर्जा आ पाती है। अन्यथा केवल फार्म के द्वारा कविता से गीत का अलग होना मायने नहीं

रखता।

बड़ी तेजी से गद्यात्मक हो रहे युग बोध को गीतों में उतारने को आज गीतकार यदि सहज न रहे तो गीतों का चरित्र बदल सकता है। सहज मानीवय करुणा का अभाव जिस तरह समाज और जीवन में हो रहा है, गीत के रागतत्त्व और लयात्मकता से इस स्थिति को पाटा जा सकता है। मैं कहना चाहती हूँ कि सहज मानवीय करुणा के अभाव को ढँकने की कोशिश में गीत का स्वर आरोपित नहीं होना चाहिए। यदि यह स्वर आरोपित नहीं हो तो गीत आज भी जीवन्त की सत्ता को जीवित करने का एक सशक्त माध्यम है। इस तरह के गीतों के सृजन से निष्करुण लेखन से बचा भी जा सकता है।

समाज में सक्रिय परिवर्तनकामी शक्तियों के साथ गीतों के जुड़ने की बात जब होती है तो कविता के इतिहास के पिछले पन्नों को भी पलटने की बात सामने आती है। गीतों में प्रगतिवाद का पुनरागमन हो और उसका वही परिणाम भी हो तो यही अच्छा है कि गीत अपनी बुनियादी विरासत से जुड़ा रहकर अपने सामाजिक और सामयिक सरोकारों को अधिक तेज करे और आवश्यक होने पर समय का अतिक्रमण भी कर जाए। जानलेवा व्यवस्था का मर्सिया पढ़ते रहने से कोई फायदा नहीं। इसे बदलने की आकांक्षा रखने वाली सक्रिय ऐतिहासिक शक्तियों का साथ देना ही उचित है। पिछले दिनों गीतों ने जो असंतोष व्यक्त करने का काम किया, उसको बन्द होना चाहिए। आज गीतों की अभिव्यक्ति के लिए वृहत्तर भूमिका चुनने की आवश्यकता है। केदार और नागार्जुन की कविता ही नहीं, उनके गीत भी अपनी ऊर्जा के कारण हमारे लिए प्रासंगिक हैं। उन गीतों का सामाजिक सरोकार और युग सत्य का अवलोकन ही उन गीतकारों को आज भी प्रासंगिक बनाए हुए हैं। प्रगतिवाद में भी एक तरह की भावुकता थी। सपना देखने की अपनी एक अलग जिद थी। आज के गीतों को उस भावुकता और उस जिद से भी बचने की जरूरत हो सकती है। व्यवस्था कहाँ-कहाँ हमें काट

रही है, कैसे-कैसे दिखे-अनदिखे तरीकों से हमारा अहित करती है, इसकी समझ रखकर ही गीतों को विरोध और विद्रोह की मुद्रा अपनानी चाहिए।

एक दुखती हुई स्थिति यह है कि जब-तब गीतों को निरस्त करने के प्रयत्न होते रहे हैं। विशेषकर नवगीत-आन्दोलन के साथ तो यह विडम्बना जुड़ी ही रही। यह बात और है कि गीत/नवगीत कभी निरस्त नहीं हुआ। कविता की तरह उसकी कभी वापसी नहीं हुई क्योंकि गीत कहीं गया ही नहीं। वह सदैव समाज और जीवन—जन्म से मरण, संगठन से चुनाव, विरोध से परिवर्तन, क्रांति से शांति,—सभी मोर्चों पर उपस्थित रहा। घर से बाजार तक, गली से चौराहे तक यहाँ तक कि अनहद नाद तक सबको घेरे रहा। वैयक्तिक समझ के साथ जन-जीवन की सामाजिक परिकल्पना, जन-चेतना के साथ उसका लोकरंग भी अत्यंत प्रदीप्त रहा। कारगर भाषा, लोक संवाद, लय-छन्द, वैचारिकता को मानसिकता में बदलने की तकनीक, अनुभव की निश्छल सामाजिकता इधर के गीतों की अनन्य विशेषताएं हैं। इन विशेषताओं को जुगाकर ही गीत अपनी सत्ता को विशेष रूप से उद्घाटित करता रह सकता है।

इस कठिन समय में, मेरा मतलब है कि इस चुनौती भरे समय में जब मर्यादा और अनुशासन आडम्बर बन गए हों, संस्कृति धीरे-धीरे विदा ले रही हो, विचार बनने के पहले ही समाप्त हो रहे हों, गीतों में ही हमारा अस्तित्व सुरक्षित रह सकता है। गीतों में ही सुरक्षित रहती है मनुष्यता। माँ के हाथों से सँवारे गए बच्चों की तरह ही स्वस्थ सुन्दर दीख सकता है गीत जहाँ हम अपनी धमनियों की आवाज सुनते रह सकते हैं। सारे बौद्धिक हथियार जहाँ निस्पन्द हो जाते हैं, गीत हमे सचेत और सतर्क करता रहता है। जन संघर्षों के साथ ताल में ताल मिलाकर गीत ही चलता है। मानव मुक्ति का सबसे सही महामंत्र है गीत। महामंत्र के बाद जो शब्द टूटते नहीं हैं, गीत बन जाते हैं। सही जमीन की तलाश में जो स्वर निकलते हैं, वे गीत बन जाते हैं। अपने हाथों और

पाँवों पर जिन शब्दों को भरोसा होता है, वे गीत बन जाते हैं। समय की मांग और लोकतंत्र के नाम पर जो लय फिसलती नहीं, गीत बन जाती है।

जन संस्कृति का परिष्कार और उसका पुनर्निर्माण आज गीतों की सबसे बड़ी जिम्मेदारी है। शब्दों को आज अधिक सक्रिय होने की जरूरत है। इतने खुरदरे यथार्थ जिनमें रचनात्मकता की इतनी संभावना हो, पहले कभी नहीं दीखे। आज समय जितना सपाट दीखता है, उतना ही बेचैन भी। समय का यह अंतर्विरोध पहले कभी इस तीखे रूप में प्रकट नहीं हुआ। इसलिए इस समय में गीतों के लिए काफी उर्वरा शक्ति भरी है। वर्तमान सामाजिक-राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था ने और चाहे जितना क्षत-विक्षत किया, पारिवारिक और व्यक्तिगत सम्बन्धों का भी इसने कम नुकसान नहीं किया। ये ठहरे हुए सम्बंध, काठ जैसे सपने पहले आये भी तो इतने विदीर्ण करने वाले नहीं थे। गीत इन सम्बन्धों और सपनों को भी नए सिरे से रच सकता है और रच भी रहा है। गीत की उपलब्धियों और संभावनाओं पर तभी विमर्श होते रहते हैं।

साठ के दशक के गीत जिन्हें हम नवगीत कहते हैं, उन पर प्रामाणिकता की मुहर लगानेवालों में राजेन्द्र प्रसाद सिंह, शंभुनाथ सिंह, उमाकांत मालवीय, ओमप्रभाकर, शान्ति सुमन, माहेश्वरं तिवारी, उमाशंकर तिवारी, श्री कृष्ण तिवारी, अनूप अशेष, किशन संरोज, बुद्धिनाथ मिश्र आदि के नाम वरेण्य हैं। नवगीत से होता हुआ गीत जब अगले सोपान पर पहुँचता है तब उसका नाम जनवादी गीत हो जाता है। नव और जनवादी विशेषण लगने के बाद भी मूलरूप में गीत रहता है। जनवादी गीतकारों में रमेश रंजक, शान्ति सुमन, नचिकेता, अश्वघोष, महेन्द्र नेह, मोहदत्त, रामकुमार कृषक और विशेष रूप से शलभ श्री रामसिंह के नाम उल्लेखनीय हैं। इन गीतकारों ने गीतों का एक मुकम्मल इतिहास रचा है।

इस जटिल समय में जब आदमी को लोहा बना देने की साजिश जारी है, बूढ़े कुछ कहने से कतराते हैं और बच्चे

हँसने से। युवापीढ़ी के सपनों में जंगल उग आये हैं और कोई शातिर हाथ जब जंगलों को भी काटता है तो उनसे खून निकलता है—गीत इन तमाम परिस्थितियों पर अपनी आँख टिकाए हुए है। आप मानेंगे कि जब शब्द विधाओं में कैद होकर अपनी जीभ गँवा रहे हों, गीत में केवल गीत में वे अपनी जुबाँ खोलेंगे। वे बूढ़ों को कहने की हिम्मत देंगे, बच्चों को हँसने के ढेर सारे अवसर और युवापीढ़ी के सपनों में जंगलों की जगह हरी-भरी क्यारियाँ लगायेंगे। गीत एक नया संसार रचेंगे जिसमें अपनत्व के ढेर सारे पर्व होंगे। आनेवाला समय चाहे जितना निष्करुण हो, गीत अपने प्रतिरोध में जूझेगा, प्रेम से सबको मनाएगा और जीवित मनुष्यता का दस्तावेज बनेगा।

—शान्ति सुमन

सप्रसंग

मेरे जनवादी गीतों का संग्रह ***'मौसम हुआ कबीर'*** 1985 में प्रकाशित हुआ। उसके बाद 1991 में मैथिली गीतों का संग्रह **'मेघ इन्द्रनील'** प्रकाशित हुआ। इसके उपरांत 1994 में **'समय चेतावनी नहीं देता'** के नाम से कविताओं और 1997 में **'तप रहे कँचनार'** नाम से गीतों के साझा संकलन आये। यह संयोग ही है कि **'मौसम हुआ कबीर'** के बाद मेरा अपना एकल संकलन नहीं आया।

'भीतर-भीतर आग' **'मौसम हुआ कबीर'** के बाद मेरे गीतों का एकल संकलन है। इसमें अधिकांश गीत 1994 से 2002 के पूर्वार्द्ध तक लिखे हुए गीत हैं। मैंने एक स्वच्छंदता ली है कि इसमें 1970 से लेकर '93 तक के कुछ गीतों को भी सम्मिलित किया है। ये कुछ ऐसे अप्रकाशित गीत हैं जो किसी संकलन में नहीं और अभिव्यक्ति की शर्त्त पर अपना हक़ मांग रहे थे। इसीलिये मैंने इन गीतों को इस संग्रह में समाहित किया। इन गीतों की संहिति के पीछे यह विचार भी सामने रहा कि इनसे इस कृति के गीतों के आधार पर मेरी गीत-रचना की जमीन को समझा जा सकता है और साथ ही मेरी गीत-यात्रा का क्रमिक विकास देखने में भी सुविधा हो सकती है।

इस बीच गीत में कितने परिवर्त्तन हुए। बावजूद इसके गीत गीत ही रहे। मीडिया की चुनौतियों को स्वीकार

कर गीत सशक्त हुआ है। यह समय के बदलाव को स्वीकारते हुए आगे बढ़ रहा है। मुझको प्रसन्नता है कि गीतों में इस बदलाव के साक्षी मेरे गीत रहे हैं।

'भीतर-भीतर आग' के प्रकाशन के पीछे जो चेहरे प्रेरणा स्वरूप हैं इनमें पहला नाम चेतना का है जो स्वयं चेतना वर्मा के नाम से कवितायें और कहानियाँ लिखती हैं। इसके साथ ही मेरी पौत्री शालीना वर्मा का बार-बार इसके लिये कहना कम महत्त्व नहीं रखता। मेरे गीतों की धारा अभी प्रवहमान है तो इसका श्रेय मेरे परिवार को है और दूसरा श्रेय मेरे संघर्ष को है जिसने कम होने का कभी नाम नहीं लिया। मेरा परिवार भी एक गीत की तरह है जिसकी तीन अंतराएं हैं। पहली में अरविन्द और विशाखा, दूसरी में चेतना और सुशान्त और तीसरी में चारों बच्चे हैं–शालीना, ईशान, अपूर्व और श्रेयसी। इन सबके स्नेह मुझको भीतर से भरते हैं। बाकी एक शीर्षक है जिसका नाम है जागेश्वर लाल। गीत की अंतराएं इनके बाद ही शुरु होती हैं।

वस्तुतः अपने सभी मित्रों का स्नेह स्वीकारती हुई अपनी अजस्र आशाकांक्षाओं के साथ रचना-यात्रा में प्रस्तुत मैं–

2 जुलाई 2002 **-शान्ति सुमन**

मीठनपुरा, क्लब रोड,

मुजफ्फरपुर–842002

अनुक्रम

खंड-1 'आइने दूर तक'

हरापन ओढ़ती है/16
आँखें चिनारों की/20
इन दिनों/22
सुबह-सुबह दर्पण ने/22
मन रुई का/23
बीजों के सपने/24
दिन आये/25
नदी लौटी/26
कच्ची हँसी/29
धूप के हाशिये/30
कोई बड़ा सुकून/31
सूरज के साथ हम/33
बौर गंध पहन/25
फूले हैं बबूल/36
लौटता है नहीं पाखी/37
जरूर लिखना/39
बात-बात पर हँसना/41
आईने दूर तक/42

खंड-2 'पूरी पृथ्वी माँ'

बदली का हिरना/43
गमला करोटन का/44

खुशबू के आखर/46
उजली धार/47
जीता है मौसम/48
जुही की टहनी/49
अबके फिर गुलमुहर/51
गंगा की लहर/52
कोई परछाई/53
फागुन के दिन/54
बड़ी हुई धूप/56
सर्दियों के दिन/58
ऋतु का प्यार/60
शुभ दिन/61
पूरी पृथ्वी माँ/62

खंड-3 'भीतर-भीतर आग'

अनगाये गीत/63
फूलवाली आँख/65
गमकी ऋतुगंधा/67
कोंपल के तन/68
मुस्कान/69
पीली लहठियों वाले हाथ/71
कोई रक्तपलाश/72
कभी खुशी में/73
कितना प्यार/75
धूप कहेगी/77
एक उजली भोर/78
काँटे भी प्रार्थना बुनते/79
इसी तट पर/80
पुरानी याद/81
आँखों की खुशियाँ/82
बरखा से हम-तुम/83

सबसे पहले तुमको/84
अपना प्यार/85
पत्ते झड़े हुए/86
भीतर-भीतर आग/87

खंड-4 'नदियाँ इंगुर की'

गाँव नहीं छोड़ा/89
हरे-भरे खेतों के गाँव/91
आँखों में घर/93
एक प्यार/94
ठहरा हुआ बचपन/95
अपनापन/97
सूर्य का उदय/98
सूर्य को प्रणाम/100
धूप-तितलियों वाले दिन/102
पाखी लौटेंगे/103
गीत कभी का गाया/104
सपने लौटे हैं/105
शरद ऋतु का आकाश/106
साथ मेरे चल रही/108
तुमको चाहा कितना/109
पैर की छाप/111
तुम एक सघन पेड़ हो/113
धीरे पाँव धरो/114
सिन्दूरी साँझ/116
फूटते धान सा/118
गीत गाये देहरी/119
नदियाँ इंगुर की/121

●●●

हरापन ओढ़ती है

फिर हरापन ओढ़ती है
ताल में झरती कमल की पंखुरी

हवा बहते ही चमकती
ये भरी आँखें
डाल पर तैयार उड़ने को
रुकी पाँखें

उस शिवाले के कलश पर
मेघ फूँके बंसरी

उजाला सा फूटता पथ
दीखते वन के
पाँव में छाले लिये
पायल कई खनके

मोड़ पर भरती कुलाँचें
हिरनियाँ जो थीं डरी

अवतरण होगा बहेगी धार
गंगा की नई
गाँव की पगडंडियों में
राजपथ होंगे कई

छाप नंगे पाँव की
अब शहर में लगती बड़ी (30.01.94)

◆◆

आँखें चिनारों की

झील के छल-छल जलों पर
छप रही इन पत्तियों में
चमकती आँखें चिनारों की

सूर्य जब से उग रहा है
लिख रहा है झील की आदिम कथा
छाँह में जलती युगों से
अनकही शैवाल की उजली व्यथा

दीखने को बहुत कुछ इन
रंग बिखरे जादुओं में
दुख रही आँखें पहाड़ों की

पाँव के नीचे दबे जो
चुभ रहे ये घास के तिनके
घाटियों के परायेपन से निकल
हो रहे इनके कभी उनके

बहुत काले मलिन बादल
घिर रहे इन बस्तियों में
टूटती साँसें कहारों की

याद भी आता कभी तो
एक पूरा दिन नया होता
बंजरों को बाँटने अंकुर कभी
उमगता बहता हुआ सोता

आग भीतर जल रही पर
ठोस दिखती मिट्टियों में
गुनगुनाती धुन बहारों की

(30.01.94)

◆◆

इन दिनों

इन दिनों सपनों में कोई
नीलकमल लाता है

मेड़ों से तिनकों के गीत को लिये
उड़ती हवाओं में चिड़िया
फूलों-टहनियों को रूप-रंग देकर
होठों को हँसी और आँखों को निंदिया

दिन दुपहर में सोना-सोना
इन्द्रधनुष छाता है

दिन को तितलियों सा उड़ा रही
सपनीले मेघ की बदलियाँ
चैत में माघ, कभी वैसाखी सावन
नेहों की गूँज हुईं आँख की पुतलियाँ

रात गये साँसों में
इन्द्रकमल गाता है

ऐसे भी दिन हों, कोई कंचन-मृग हो
आँखों की यात्राएँ कानों तक ठहरे
अँजुरी की जूही आँचल में भर जाये
रूपमती कोई घुटने जल में उतरे
भीतर से भर जाये
यही नेह-नाता है (25.02.99)

◆◆

सुबह-सुबह दर्पण ने

जाने कितनी बार जगाया
सुबह-सुबह दर्पण ने

महुवा हवा नींद भर लाती,
माँ की थपकी-सी मन भाती
उजले धूप-गीत की वंशी
छेड़ी तान किरण ने

जाने कितनी बार हँसाया
सुबह-सुबह दर्पण ने

गिनती करती हुई अंगुलियाँ
बातचीत में फँसी मछलियाँ
होते भोर बुलावा भेजा
कलियों को कानन ने

'मिस' की तरह आज फिर डांटा
सुबह-सुबह दर्पण ने

माँ की बाँह पकड़कर सोना
सपनों में भी जादू-टोना
बाबू जी को कहा–मनाया
अकसर भोलेपन ने

गोल किया मुँह टाफी पर भी
सुबह-सुबह दर्पण ने (09.05.79)

◆◆

मन रुई का

पड़ी औंधी नाव
रेतों को पसीना छूटता है
इस सदी में कहाँ कोई
घर हमारा पूछता है !

दस्तकें देती हवा
ठहरी हुई चौगान पर
मन हमारा भी ढहा है
कुछ इसी अरमान पर

देख भाई, काँच का सपना
कहाँ से टूटता है

पहन सारी चुप्पियाँ
घिरने लगे हैं कूल
बिना कुछ भी बताये
झरने लगे हैं फूल

धुने जाने के लिये ही
मन रुई का फूटता है

शिराओं में बज रहे जो
रात-दिन के शंख
देखते बच्चे किताबों में
बया के पंख
कौन यह हँसते हुए –
सुख का खजाना लूटता है (30.03.99)

◆◆

बीजों के सपने

पानी की रात और पानी के दिन
तैर रहे बतखों के जोड़े पल-छिन

मेड़ों से पिछले गीत को उठाकर
चिड़िया आकाश को निहारे
खेतों में अँकुराये बीजों के सपने
तिनकों का हरापन आँख में सँवारे

नये कटे धानों के बोझे अनगिन
मीठे आलाप और बिछिया झिन-झिन

हाथ में कुदाल और माथ पर पसीना
एक मीठी हँसी की कमाई-यह जीना
फैल गये हस्ताक्षर धूप की लिखत में
अँजुरी में भर आया नेह का नगीना

मछली की आँखें ले जाये सब छिन
चुके नहीं सपनों के अनबोले रिन

नीड़ों में सँजोकर हवा और तिनके
देख रही कल का अँकुराया सपना
मन की इच्छायें इस मिट्टी को सौंपकर
दो आँखों में अछोर आसमान अपना

कीचड़ पर लगा गये पाँवों के पिन
मोती के मोल बिकी दूब की तुहिन (08.12.99)

◆◆

दिन आये

दिन कैसे-कैसे आये
दिन आये

रंगों का पुड़िया उड़ा
हवा लाल हुई
बादल की देह यों लगी
गुलाल हुई
दुख के अँखुवे पल में मुरझाये
दिन आये

दूब ने कनखियों से
क्या देखा
खिंची हुई भाल पर
सगुन रेखा

गाँव के सीवान लाँघ आये
दिन आये
नदी-घाट सूखते अंगोछे
धूपों ने लहर के
मुँह पोछे

कहा धीरे, लो जी ! हम आये
दिन आये

हाथों से हाथों
की दूरी

भली रही यह भी
मजबूरी
साँस पर पहाड़ उठा लाये
दिन आये

(05.07.2000)

◆◆

नदी लौटी

छाँह ने भेजे निमंत्रण
मुंडेरे तक सरक आयी धूप
रोटियों सी सेंकती है
प्यार से फिर पलटती है
हवा जब भी मेड़ पर
घर से दुबारा लौटती है
हँसना भी तो मन ही मन
छू आँख से हल्दी नहाया सूप
तहाती है ओढ़नी सी
जल झुकी उस मोरनी सी
पेड़ के आसंग में भी
हैं लतायें अनमनी सी
कौन देखे नहीं दर्पण
सँवारे जल ने कमल के रूप
चलो आधा चाँद छू लें
एक पूरा मन कबूलें
आज जाने रेत पर क्यों
उठ रहे पीले बगूले
बहुत होता एक अपनापन
नदी लौटी नेह ले अनुरूप (06.07.2000)

◆◆

कच्ची हँसी

अरी जिन्दगी पानी में तू बना रही घर है
बाहर-बाहर है वसन्त, पर भीतर पतझर है
जहाँ कहीं भी जली रोशनी
तुझको हुआ पता
पर अपने टुकड़ों को कैसे
जोड़े तुम्हीं बता
टूटी हुई छतों पर उड़ता
सपनों का पर है
शब्द जोड़ते रहे –
गये ढहते ही सबके माने
एक आग जलती ही रहती
सिरहाने–पैताने
भींग रही वर्षा में कच्ची हँसी
बहुत बेघर है
जड़ी हुई गहनों पर
भींगी आँखों की छापें
इस जंगल में तेज हवा
तू कहाँ-कहाँ नापे
इतना तो तय है कि तुम्हारा
उठा हुआ सिर है

(09.07.2000)

◆◆

धूप के हाशिये

शहरों ने जाले बुने
हमने माना कि रिश्ते नये

सो रही है न जाने कहाँ
एक हल्की गुलाबी मिठास
कुछ आकाश ऐसा रहा
हट गये पत्थरों के लिबास

बादलों के ये साये घने
और भी धूप के हाशिये

रख गयी धुनकर रूई सा
अनगिन यात्राओं की याद
कुछ समय-अंश ऐसे रहे
हाथों में सागर के झाग

झुकी हुई पीठ क्या तने
बस बुझे हुए क्षण ही जिये

(02.06.'86)

◆◆

कोई बड़ा सुकून

बहुत दिनों पर चाँद खिला है
कोई बड़ा सुकून मिला है
जरा सितारों मुझे बताओ
आखिर किसका तुम्हें गिला है

बढ़ते हुए हवा के झोंके
अन्धाधुन्ध पाठ लहरों के
इससे पहले पेड़ गर्क हों
पहले गुजरो उससे होके

दिन ढलता है ढल जाने दो
गर्द-गुबार निकल जाने दो
शायद कोई बात बने ही
मुझको जरा सँभल जाने दो

हवा, चाँदनी है, मस्ती है
चाँद-सितारों की बस्ती है
यहाँ सभी समान महँग हैं
सबसे बड़ी जान सस्ती है

जिसे छू दिया, आग हो गया
छोटा-मोटा बाग हो गया
इधर अँधेरा, उधर अँधेरा
घर का बुझा चिराग हो गया

यह मजबूरी रह जाती है
खासी दूरी रह जाती है
जब-जब हुआ सुबह आयेगी
रात अधूरी रह जाती है

(15.08.'87)

◆◆

सूरज के साथ हम

खिसकने लगा अब किनारा
छूटने लगा है जहाज

अभी–अभी जो जैसे थे
धीरे से अनहुए हुए
बादल की नदी लांघकर
सूरज के साथ हम बहे

हिलते हाथों का सहारा
महंगा मूंगे का ताज

मुस्कानों का एक अदद मौसम
सामने पलासों-सा दहका
बीच दुपहरिया में जैसे
धूपो से सिंकता मन महका

पिछली यादों में दुबारा
उधड़े कमीजों के काज

यह कैसा विदा का सन्नाटा
कोसों तक सूना मन कांपा
उंगलियों फंसा छोटा-सा कागज
हवा ने उदासी को छापा।

कितना अमीर जी हमारा
सपनों पर है जिसको नाज।

(29.09.'80)

◆◆

बौर गंध पहन

बौर गंध पहन पवन
घर आंगन डोले

फूल की कनखियों पर
हामी भर टहनी
खोल गयी क्षण में ही
सारी अनकहनी

रूप-नखत लिये गगन
झांक रहा हौले

घूंघट के बीच हंसे
कोहबर के दीप
देहरी पर रखी लाज–
टह–टह दो सीप

छाये घन सान्द्र सघन
पंख नये खोले

मौलायी मौलश्री
दुख रहा उजाला
चुभती पड़ोस की
चांदी की माला

स्नेह सने नीलनयन
सहज रंग घोले

(28.01.2000)

◆◆

फूले हैं बबूल

रोपे तो शीशम के पेड़ गये
फूले हैं यहां पर बबूल

उगते ही सूरज के शोर भरी
बजती कारखाने की सीटी
पेट छीनता नींद आंखों की
पाँव तले पत्थर की मिट्टी

लोहे के सूर्य और चांद हुए
दूबधान नहीं हैं कबूल

दुपहर छाते धूलों के बादल
घंटी के पहले भूख की मनाही
सड़कों पर बिछी हुई ईंटों की किरचें
बहियों में नहीं दर्ज होती तबाही

आग खोजती है हौसले नये
जहाजों के हिलते मस्तूल

और बड़ी हो गई छायायें
दुबली रोशनियों की देह
पथरायी प्रतीक्षा ले पुतलियां
रूई-से उड़ते हैं दुखियारे नेह

जीने की शर्त और सांस के लिए
जीवन में मरन सौ फिजूल

(09.03.2000)

◆◆

लौटता है नहीं पाखी

लौटता है नहीं पाखी
खोजता है ठांव

जितनी तपेगी मरूथल की रेत
दुहरेगा मौसम का छल
महुआ के वन में पूरे वसंत भर
घिरेंगे धुओं के बादल

होंगे सब अनहुए
यात्रा बांधेगी पांव

सूर्योन्मुख हो भले न अंधकार
कांच की नोंक तो नहीं
धुंध में बही जो रोशनियां
अनगायी नदी तो नहीं

साथ रहे मछली के
जीते मछुआरे गांव

अगले–पिछले समयों के पन्ने
खुलते धानों के खेत
इन्द्रधनु, ऋतुएं, हवाएं
उड़ाती हैं पलकों की रेत

क्षितिज पर टंगी है
दिखी हुई आंखों की छांव

(27.06.'71)

◆◆

जरूर लिखना

बाहर की तो बात पता है
तुम घर की लिखना

जाते होंगे बूढ़े बाबा
सुबह रोज टहलने
दादी अम्मा तुलसी चौरा
लगी साफ करने

सूरज कैसे उगता है
यह भी जरूर लिखना

रोशन आनाकानी करता
है हरदम उठने में
माँ का समय चला जाता
उसका बस्ता करने में

फिर वह कैसे रहता है
इतनी बातें लिखना

घर में आना बन्द हो गया
होगा टाफी-वाफी
बिस्कुट का रहना घर में
होता होगा नाकाफी

स्याही सनी हुई उंगली
का हालचाल लिखना

अभी नहीं सूखी होंगी
दीवारों की लतरें
छोटे घर में आनेवाले
लोग कहाँ ठहरे

मुश्किल से ही होता है
फिर गुजर-बसर लिखना

(03.05.2002)

◆◆

बात-बात पर हंसना

तुम्हारा बात-बात पर हंसना
कभी हाथ धर, कभी उठा ऊपर
मुंह की रंगत नयी बदलना

देर-देर हो-हल्ला–किस्सा
नदी-पाट पाने का
अगली वर्षा तक कमीज के
रंग नये आने का

तुम्हारा गांठ-गांठ का खुलना
हौले आंख नचा भीतर–
कच्ची मिट्टी-सा तुनुक लरजना

गीतों में कड़वाहट मन की
डुबा निकल जाना भीड़ों से
खुली बांह पर हाथ टिकाये
जैसे पाखी संग चीड़ों के

नहर की लाल मछलियां तकना
बैलूनों को देख मचलना बाहर
भीतर से बहुत दहकना

(27.06.'69)

◆◆

आइने दूर तक

हवायें थीं, धूप खुल-खिलती हुई
जिन्दगी में इस तरह आँधी न थी

चमचमाते आइने थे
दूर तक चमके हुए
चेहरे अपने-परायों
के सभी दमके हुए

एक छल ने काँच से चिनका दिये
इतनी मँहगी तो कभी चाँदी न थी

जब कभी उतार लेते
ज़मीन पर आकाश को
मोतियों से गूँथ देते
लरजती हर घास को

रोशनी की आँच से आँखें खुलीं
वर्जनायें लकीरें लाँघी न थीं

सहज था उन धुंधलकों में
उजालों का देखना
चुप्पियों से जुड़ा होता
पेड़ शब्दों का घना

हौसले हिलते घरौंदे प्यार के
हँसी अपनी किसी की बाँदी न थी

(20.06.'99)

◆◆

बदली का हिरना

मन भटका जाने
तब से कहां-कहां
आंखों को मूंद गया
बदली का हिरना

तुलसी-चौरा और आंगन-चौबारे
बांध दिये बिजली ने उजले कगारे
चुप-चुप देख रहा मेघों का घिरना
आंखों को मूंद गया बदली का हिरना

छत की दीवारों पर गहराई काई
गोरैया बांट रही दिन की कमाई
सूनापन टांक रहा लहरों का फिरना
आंखों को मूंद गया बदली का हिरना

पुरवा लगा गयी गंध के निशान
आपस में उलझ गये दोतरफा बान
मन को उलीच रहा नावों का तिरना
आंखों को मूंद गया बदली का हिरना

आज हुई ऋतुओं में कोई अनबन
तन फागुन-फागुन-सा मन जैसे सावन
सुधियों में छहर रहा सपनों का झरना
आंखों को मूंद गया बदली का हिरना

(21.09.2000)

◆◆

गमला करोटन का

बहुत खुश हूँ
खुश बहुत हूँ
हाल अपना लिखो
क्या हुआ कल रात आयी
जोर की आँधी
नीबुओं की पत्तियाँ फिर
रात भर जागीं

समय कम है
कम समय है
हर मुहिम पर दिखो
एक गमला करोटन का
ले गया कोई
अँधेरे में पत्थरों को
बो गया कोई

तेज कर उड़ानों को
उड़ानों को तेज कर
धीरज रखो
अलग मत करना कभी
इस कठिन दिन को
छाँह में भी धूप के किस्से
कहो मन को

खेत में फसलों सी
फसलों सी खेत में
दिन-दिन पको

(10.07.2000)

◆◆

खुशबू के आखर

सहमे-सहमे पत्ते डोले
चिड़ियों की पाँखों को खोले
हवा उधर से बहती जाना
खुशबू के आखर लिख आना

नींदों में बतियाती पलकें
ओठों के संगम पर चलके
टुकड़े जोड़ रही दिन भर की
बातों में जी का दिख जाना

पूरे दिन की थकी हुई सी
मूंगों जैसी टँकी हुई सी
हँसियों का झरना बह जाना
अपना सुन्दर घर भर जाना

बहुत दिनों पर बेटी जैसी
घर आई हो खुशी भली सी
इस दिन को सौ जनम बनाना
सुख को साँसों में रख जाना

(16.09.2001)

◆◆

उजली धार

यह नया दिन उगा भीगी आँख में
बच्चे की हँसी की तरह

हँसी जैसे सूखते कपड़े छतों पर
लाल स्याही ढरकती पूरे खतों पर

धान-बाली फूल जायें बात में
नदी की उजली धार की तरह

थरथराते पुलिन की गवाह एक चिड़िया
दूर जाकर बहुत फिर से लौटता दरिया

फूल होती पंखुरी की बाँह में
बजती खुशबू प्यार की तरह

बात कि प्यासी नदी सूखी न थी
और पछुवा चैन की भूखी न थी

धूप, फूल, गंधों के गाँवों में
दो-तीन सपने हजार की तरह

(06.01.2002)

◆◆

जीता है मौसम

कई बार बहुत कुछ करता
हमारा जीवित होना भी

मौसम में जीते हैं हमसब
हम सब में जीता है मौसम
अंधकार से लड़े हमारे
हाथ जुड़े रहते हैं हरदम

नया द्वार सुस्वागत करता
हारता जादू-टोना भी

हवा हमें रोज रखती है
चौराहों के बीच
डूब रहे जो पाँव बताते
यहाँ उलीचें कीच

अँधेरा ही रोशन करता
सूना मन का कोना भी

आचरणों को गढता जब
भाषा से बंधन तोड़
वही व्याकरण देता है
कागज से हमें मरोड़

मँहगा गेहूँ जी में डरता
रोता खून का रोना भी (01.02.'94)

◆◆

जुही की टहनी

एक सुनहरा स्वप्न-सरीखा
यह सुकुमार जुही की टहनी
दो पल ऐसे घुल-मिल जायें
जीवन लोक कथा बन जाये

खुलते आँख जगे जब सूरज
झीने नील चंदोवे वाला
खिल-खिल करता एक हँसी-दिन
हरसिंगार सा झरनेवाला

एक नदी घर में सगुनाये
नीले-पीले कितने साये

घर में छाप लिखे पैरों की
महक रही मिट्टी आंगन की
कई सीपिया घुंघरवाली
गेरू लिखी कथा है मनकी

धूप-हवा अल्पना रचाये
इन्द्रकमल जैसे खिल जाये

सरसों सी अँकुरी देहों पर
गीत-बुनी दो मछली आँखें
नेहिल बोल बोलती भागी
चिड़िया उड़ी खोलकर पाँखें

पाँच जोड़ बाँसुरी बजाये
नन्दन-वन घर को सपनाये

(23.11.

◆◆

अबके फिर गुलमुहर

अबके फिर गुलमुहर दहके
गाछों भर आग से लहके
किसी संझियाये पहर में

प्रतीक्षा-धुली दो आंखें
लाल-उजली मेघ-पांखें
इस उन्मन दीखते शहर में

बनते ही बांहों के घेरे
सुरभि के संवाद से घनेरे
कजलायी आंख की लहर में

उतरेगा किसी हरी डार-सा
दिन होगा पेड़ हरसिंगार का
सूर्य-बिम्ब पास की नहर में

(16.03.2000)

◆◆

गंगा की लहर

एक साथ
गंगा की लहर फिर गिनें

सीढ़ियों पर बैठ धूपबाती जलाएं
पानी पर दीप की कतारें सजाएं

मंदिर–ध्वनि
हाथों में जल भर सुनें

डाली में बहते चम्पे-से मन को
बांधे उदास नावों में क्षण को

चाहों के
सूत समय को पकड़ बुनें

उंगली में भरें रोशनी की लकीरें
आओ, अंजुरी से जल–चम्पा चीरें

हरे-भरे
दिन को हम उमर भर गुनें

(01.06.2000)

◆◆

कोई परछाई

वादी में कोई परछाई उलझी
वनपाखी भी शायद इससे ठहरा

सूरज नाव बांध गगन की
चला शिथिल नाविक-सा
पीछा करता अधखाया दिन
घर में किसी बधिक-सा

हरियाली में मन की उलझन सुलझी
अम्बर में बादल देता है पहरा

गिराकर हर पाल सपन का
तेज बहती हवा रुकी
मन में उगे ताप देहों के
संकेतों-सी डाल झुकी

मैले अंधियारों ने पीड़ा सिरजी
गाँव से कोई शहर में आकर बिखरा

आंचल बांध रात ऊँधती
लगते तारे वनफूल
कास के टूसे-सी गड़ती
सड़कों वाली यह धूल

कमलिनी यहाँ खीजकर जड़ से मुरझी
अधराती आँखों का काजल झहरा (15.09.'72)

◆◆

फागुन के दिन

अलसाने लगे फागुन के दिन
फागुन के

धूप-छंद रचकर सिरहाने
रात लगी मंजीर बजाने
महुआने लगे पातों के तन
फागुन के

अंग-अंग रससिक्त कथाएं
मोरपंख-सी खुली हवाएं
बतियाने लगे हैं भर-भर दिन
फागुन के

लगा गंध की नदी नहाके
आंख खुली पाजेब बजा के
सुलझाने लगे जूड़े-सा मन
फागुन के

झरने लगे गंध के झरने
भींगी देह आंख–मन करने
दुहराने लगे सब पिछले क्षण
फागुन के

ऐंपन लगी गमकती सुबहें
अमलतास की कथा क्या कहें
सगुनाने लगे शर-विंधे सपन
फागुन के

(23.03.'74)

◆◆

बड़ी हुई धूप

बड़ी हुई कुछ और धूप
ये तेवर निखरे जून के
उजले-उजले पंखों वाले
पाखी जैसे हों चून के

भरी हुई उजली दोपहरी
हुई छाँह पेड़ की छोटी
अब घर नहीं लौटते बच्चे
सिर पर रख कापी मोटी

बिखर गये बस्ते जैसे
सामान किसी परचून के

अक्षर-अक्षर नाच रही
आँखें जैसे हों तितली
सिर पर चढ़े मोर सी नाचे
चंचल पानी की मछली

हँस-हँसकर दुहरे होते वे
सपने उड़ते बैलून के

धीरे-धीरे दिन जाता है
रात कहीं से जल्दी

बाग हुए रस भरे अमावट
देह लगी जो हल्दी

बरफ चूसकर लेटे होंगे
खत पढ़ते पिछले जून के

(07.05.'79)

◆◆

सर्दियों के दिन

चिट्ठी की पाँती से खुलने लगे हैं दिन
सर्दियां होने लगी हैं और कुछ कमसिन

दोहे जैसी लगती सुबहें
रुबाई-सी लिखी दुपहरी
खिली हवाएं टहनी–टहनी
खिड़की के कन्धे ठहरी

चमक पुतलियों में फिर भरने लगे हैं दिन
टँके कुहासे जैसे हों नीले रिबनों पर पिन

कत्थई गेंदा पर ठहरी
खुशबू से दुहरी आंखें
हल्के मादल संग बजी
चिड़ियों की उजली पांखें

नदी में फिर कंचन–कलश भरने लगे हैं दिन
रखते हैं उजले छौनों से पांवों को गिन–गिन

लपेटकर सूतों से किरणों को
सहेजना जेबों में
मछली की रुनझुन बजती
पोखर के पाजेबों में

हाथ भर हल्दी सगुन करने लगे हैं दिन
सांझ होते आरती बनने लगे पल–छिन

(15.02.'81)

◆◆

ऋतु का प्यार

था तो अमलतास था ऋतु का प्यार
बहुत अटपटा था तब
क्रीम–गंध से अलग
दूध-सा महकना
एक अलाव बहुत लाल
बहुत पतली घाटी में
वनफूल-सा दहकना
चट्टानों के सिर लिखा हुआ स्वीकार

रोकर सरल क्षणों में
मौसम की हवाओं-सा
आहिस्ता सरकना
रोपकर मुख पर आंखों को
हिलते कास वन में
हंसुली-सा चमकना
गीत के आखर सरीखे तप रहे कचनार

धमनियों से फूटते
कच्चे बांसों के रंग को
सांसों में भरना
कमलदह के गीतों में
तैरकर लगातार मन में
बंशी-सा बजना
छोटी सड़क पर चलते गमकते आभार

(05.01.'83)

◆◆

शुभ दिन

ऋतु के स्वागत गीत गूँजते
शुभ दिन आये

शिशिर-स्नेह-सुगंध नहाये
प्रकृति-पुरुष के मन भर आये
मधुरिम तान बिखेरे सुख के
नव सुर छाये

मधुव्रता के व्रत ये फूले
सिन्दूरी सपनों के झूले
गाये फूलों की पंखुरियाँ
पाहुन आये

धान-दूब की लड़ियों जैसी
हल्दी की हथकड़ियों जैसी
सगुन सने फूटे सौरभदल
नयन जुड़ाये

पेड़ स्नेह का जब भी फूले
फूल मांगना कभी न भूले
ऐसे अनुपम मीत जनम के
तुमने पाये

(05.11.'93)

◆◆

पूरी पृथ्वी माँ

रोटी सी सच तेरी बातों को फिर करना याद
फिर से हुई उदास सोचकर तेरे बारे में

तुम पूरी पृथ्वी हो माँ
सपनों में रोज सुलगती
ऊपर-ऊपर ठोस मगर
भीतर से बहुत धधकती

तेरे दुख जितने अपने थे चमकीले आजाद
कोई कह भी सका नहीं कुछ तेरे बारे में

आटा-आटा हाथ तेरे
जब रोटी रचनेवाले
कहाँ पता था किसे मलिन हैं
होंठ वे हँसनेवाले

भीतर का भूकम्प आँख में बहुत दिनों के बाद
उतरा भी तो लोग सहज थे तेरे बारे में

बिन शब्दों के अर्थ तुम्हारे
कितनी दूर तलक जाते थे
अपनों से मिलने की खातिर
अपने से ही हट जाते थे

घर के पौधे की खातिर तुम बनी स्वयं ही खाद
आंगन की परछाईं कहती तेरे बारे में

(01.02.'94)

◆◆

अनगाये गीत

ये कहाँ से आ रहे अनजान-अनगाये
नीले कुहासे में डुबोये गीत

चुप हुई जाती हृदय की भावना
बन रही गुमसुम नवागत कल्पना
बिन उगे मुरझा गई है प्राण की
उन्मना कातर क्षणों की चाहना

कौन फिर धारे करुण विश्वास के साये
भेजते संवाद अनचीन्हे, अजाने मीत

अनपढ़ा-सा लेख तेरे प्यार का
अधबना-सा चित्र मन के ज्वार का
सुधि-गगन में नखत-सा एकांत बन
बिन झकोरे सो गया स्वर तार का

क्यों विजनगंधी पवन अनुराग अनभाये
जगा जाता शान्त मन, जैसे सुरीला गीत

सांस के ऋतुराज में यह नित पला
वेदना के सिंधु में प्रतिपल धुला
दूरवासी ओ ! सिसकते गान ये
मानकर मेहमान कैसे दूँ भुला

सिहरते तममय अधर पर हास अनपाये
आ गये जब यों गई है दीपबेला बीत

(10.03.'83)

◆◆

फूलवाली आँख

तुम मिले तो बोझ है कम
बहुत हल्की पीठ की गठरी

उस नदी में पाँव धोते
हिरनियों सी कुलाँचें भरती
गाँठें गिनती ईखों की
हवा को धूप सी करती

अँधेरे के हाथ हैं नम
फूलवाली आँख जो ठहरी

फूटते धानों सरीखे
हम बढ़े, बढ़ते गये
फुनगियों से फसल की
सपने बहुत कढते गये

दिनों की बारिश गयी थम
तुम हँसी से हो गयी दुहरी

हाथ के घट्ठे कभी जो
चैन पाकर लगे दुखने
प्यार वे पाकर तुम्हारे
करीने से लगे कमने

खेत में उतरा हुआ मौसम
हँसी की हंसिनी उतरी

(31.01.'94)

◆◆

गमकी ऋतुगंधा

सोने का चंदा, रूपा की रात
तारे मिल गाये मिट्टी की बारात

घूंघट को ताने आँचल को बाँधे
दूब-धान लेकर है निकली हवा
होठों के गीतों से मन भर परीछती
हँसियों की जाने खिलती कितनी जवा
हीरों की कनी नयन जल हैं सौगात

माँ की ममता, दुलार पिता का लिये
कोहबर में बैठी गमकी ऋतुगंधा
पूर्वजन्म कितने ही जनमे हैं आँखों में
सुधियों के भार दुखा भाई का कंधा
लौह खंड डूबेंगे आँसू की बरसात

वेदी की आग से दूर-दूर गुंजित हो
फूटेंगी स्नेह की शतमुखी ऋचायें
मंत्रों से पावन कर दोनों बाँहें उठा
आँचल भर देंगी आशीष से दिशायें
सुख लिखनेवाली स्याही भरेगी दावात

(18.02.'94)

◆◆

कोंपल के तन

बौरों का मीठा आमंत्रण
साँसों में है फूटता वसन्त

बातों में न आनेवाली हवा
इधर-उधर डोलती फिरी
कहीं हुई जवा, कमल, मालती
कहीं धूपायी खिली मौलसिरी

गंधों का ऐसा अपनापन
अँजुरी भर लूटता वसन्त

संग-संग उड़े धूल-धूपों के
केले के पात और हुए चिकने
ताल पर लिखा स्नेह-सुख आँखों का
गमक गुलालों की लाल लगी बिकने

धनुष हुए कोंपल के तन
वाणों सा छूटता वसन्त

भीतर के जल जो बँधे-बँधे
बनने लगे धूप की तितलियाँ
आँखों से होकर होठों तक उतरी
सुखों की चमकी हुई चिनगियाँ

भीतर का सोया सूनापन
सौ बार है टूटता वसन्त

(19.02.'94)

◆◆

मुस्कान

मुस्कानों में शिकन दबाये
हम अपने ही डर के मारे
गाँवों से बेदखल घूमते
इधर-उधर जैसे बनजारे

बनिया की दूकान देखते
घर से चौराहे तक आये
जेबों की सलबट पर हम तो
मन ही मन कितना घबड़ाये
चुभन अपरिचय की ढोते हम
बीच आग में गये उतारे

विरबे से हम सब तुलसी के
जलते ही जाते चौरे में
सड़कें सारी व्यस्त रही हैं
उनके आकाशी दौरे में
सूखे होंठो की प्यास लिये
छूते ही जल हो जाते खारे

ताजा माल बिकाऊ हम तो
खरीदार हैं दायें-वायें

रंगी हुई कौड़ियाँ पहने
हम हैं वधस्थल की गायें
हमें सालते राखी-टीके
इस अवघट से कौन उबारे

(15.04.'94)

◆◆

पीली लहठियों वाले हाथ

पीली लहठियों वाले हाथ
रात-दिन सपने बुनते हैं

आँखों की लाल लकीरों में
काजल की हल्की डोरों में
नाचती मयूरी की पाँखोंवाली
चादर के कोरों में

हल्दी के दागों वाले हाथ
पल-छिन अपने बनते हैं

चौके की रुनझुन बहुत भली
आँचल में छपी लाल मछली
गेहुँआ हँसियों की झीलों में
कलियाँ जूही की बहुत खिलीं

टिफिन सजाने वाले हाथ
मगन हो कितने सुनते हैं

आंगन भर गाती जो बिछिया
देहरी पर जलती बनी दिया
अगवानी में प्रार्थना बनी
वर्षा में भीगी ज्यों नदिया

स्वागतम् लिखनेवाले हाथ
सहज ही इतने रमते हैं

(05.01.'97)

◆◆

कोई रक्तपलाश

अबके इस होली में कोई रक्तपलाश खिले
अनुबंधों की याद दिलाये, पीत कनेर हिले
घाट नहाती लड़की जैसे
डूबी हुई हवा
हुई अनमनी छाँहों वाली
गुमसुम लाल जवा
राजमहल कैसे बन जाते, कैसे बने किले
पेड़ों की मुंडेर पर चिड़ियों के हैं पंख सिले
अक्षर-अक्षर छींट गया है
कोई सुबह उदासी
घूँट-घूँट पानी से तर
कर लेता रोटी बासी
चिन्ता तो होती है, पर किससे वह करे गिले
ईंच-ईंच बिक गया तपेसर होली कहाँ जले
इस मौसम में फिर कोई
जादू ऐसा जनमे
फागुन-फागुन हो जाये दिन
परवत पीर कमे
मजबूरी है, वरना कोई कैसे नहीं मिले
रंग-रंग के मेले, मन के नयन नहीं बदले

(25.02.'97)

◆◆

कभी खुशी में

अरी जिन्दगी सब कुछ कहने का तुमने
अधिकार दिया है

फिर भी हुई शिकायत तुमको जब भी
खुलकर प्यार किया है

तेज कदम चलने लगती है
रेतीले पथ पर जाने में
बीच राह में रुक जाती है
हँसी हमारे घर आने में

आड़ी-तिरछी बात नहीं यह सीधा सा
इजहार किया है

किसको रखकर किसको फेंकें
सारी यादें तो हैं अपनी
बड़े यतन से गले लगाया
अब वे कैसे हों अनकहनी

खोने-पाने का हिसाब ही गलत अजब
मनुहार किया है

तेज धूप में जलते भी–
कँचनार लिखा है कभी खुशी में
हरियाली को मौसम के पन्नों में
दिया सँवार इसी में
जब-जब आती वीराने को तब-तब सहज
दुलार दिया है

(13.04.2000)

◆◆

कितना प्यार

जब भी तुमने सर्द हवाओं
चाहा मेरे घर में आईं
तुम्हें पता है अब तक मैंने
तुमको कितना प्यार किया है

कभी खिड़कियाँ बन्द हुईं तो
ऊपर रोशनदान खुले थे
आपस में बातें करने में रोज
बया के पंख हिले थे

लू-लपटों से भरी घटाओं
तुमने अपनी नाव बहाई
मेरी देहरी के पानी ने –
कब तुमसे इनकार किया है

जेठ और सावन दोनों ही
आये, पता पूछकर आये
पर वसन्त के झोंके मेरे
आस-पास से ही घबड़ाये

माँ के हाथों बुनी दुआओं
तुमने मेरी साँस बढ़ाई
किसी पुराने मीठे दिन को
तुमने ही साकार किया है

भरे हुए दिन धूप-छाँव से
बदली कभी न खुलकर बरसी
जरा-जरा सी बातों पर ही
खुशियाँ कितनी दूर जा बसी

आपसपन पर जुटी सभाओं
तुमने अपनी साख बनाई
मैंने सूखा-बाढ़ को जीना
दिन-दुपहर स्वीकार किया है

(14.04.2000)

◆◆

धूप कहेगी

कहने की बातें हैं
सब कुछ तुम कह लो

वैसे तो वैसा होता नहीं
जो जैसा होता है
मौसम की आँखों में
अपना हाल लिखा होता है

हवा सरीखे धीरे
घर-बाहर बह लो

पहली कली खिली जाती है
इस गुलाब की
धूप कहेगी उसकी पीड़ा
खुशी आब की

बहते सुख आँखों से
पल भर को सह लो

दूध भरी बाली धानों की
चिड़िया की आँखों में
प्रेमकथा कोई रचने
को है उसकी पाँखों में

अपना घर सुन्दर है
इसमें ही रह लो

(16.05.2000)

◆◆

एक उजली भोर

बांध तो लेंगे
तुम्हारे इन्द्रधनुषी छोर

देर तक झुकी सुरभित छांह
तुहिन की गंध–मादित बांह

तान लेंगे नभ
अलस–फेनिल किरन की डोर

आंख की दहलीज जलते गीतिमा के दीप
मंजरित मोती पहनते भावना के सीप

टांकते हैं मन
सुगंधों के कनेरी कोर

यतन से कितने कभी मन के कमल खिलते
कुहासों भरते, कभी धूप में जलते

मानते अब भी
उगेगी एक उजली भोर

(16.01.'70)

◆◆

कांटे भी प्रार्थना बुनते

कांटे भी प्रार्थना बुनते
केवल फूल नहीं

जीवन के भाग रहे क्षण ये
चुप देखें हमें–तुम्हें
वे बांटें आभार आज
बिन मांगे मिला जिन्हें

एक फूल के लिए यहां तो
चुभन कबूल नहीं

संध्यामणि गूंथ जूड़े में
काढ़े रंग कुसुम के
एक खुशी के लिए हिले–
कानों के दो-दो झुमके

रात-रात भर चांदनियों को
मिलता कूल नहीं

फटी हुई पन्नी के जैसे
उड़े सड़क पर टुकड़े
अपने ही जीवन के कुछ पल
यहां-वहां हैं बिखरे

कंचन दिये जलाकर हँसते
बाग–बबूल नहीं

(23.01.2000)

◆◆

इसी तट पर

अपरिचय का आकाश तोड़ें
एक लम्बा अंतराल जोड़ें
कहां बहुत मिलते हैं
फुरसत के दिन
फंसे हैं किताबों में
तितली के पिन
पिछले छूटे सवाल कोड़ें
धूप-हवा-बिजली–
सी लगती बातें
'पद्मावत' की कथा–
सी जगती रातें
दुखते सारे मिसाल छोड़ें
अंकुर की प्यास लिये
हरियाये खेत
कहीं दूर फेंकें ये
ओसायी रेत
दिशाएं तरंगों की मोड़ें

(07.07.'72)

◆◆

पुरानी याद

बहुत कोमल सी हँसी हँसती हुई
चाँदनी भी इस तरह सस्ती हुई
जरूरी है फूल-पातों पर स्वयं को रोपना

दिन ढले की थकन और अवसाद
सामने पसरी अजन्ता सी पुरानी याद
पहलुओं, हथेलियों पर पसीनों का ओढ़ना

मेघ का घिरना, हवाओं की नमी
छेनियों से छीलती कोई कमी
टूटते-चुकते प्रसंगों पर दुबारे सोचना

रास्ते भटके, भरोसों में उगे जंगल
खिड़कियों में फँसे कागज से हुए पल
और थोड़ा समय होगा इरादों को सौंपना

(05.05.'80)

◆◆

आँखों की खुशियाँ

जब से तुमको देखा है
बस फूल-फूल है आँखों में
खुशबू लिखती जाने कब से
पंखुड़ियों में बन्द कथायें
हिरनी की आँखों की खुशियाँ
जंगल के मन को गमकाये
अब उड़ान ने भाषा पहनी
है चिड़िया की पाँखों में
हवा बदलने को जागी हैं
पेड़ों की तांबई कोंपलें
एक गीत गाने का मन है
हवा अभी से जिधर को चले
दिन सतरंगे सपनों वाले
देखे बन्द सलाखों में
मन्दिर के कलशों पर धीरे–
धीरे उतर रही किरनें
जीवन बदल रहा है जैसे
धूप लगी कविता लिखने
मौसम ने हरियाली दे दी
पत्तों वाली शाखों में

(04.05.2002)

◆◆

बरखा से हम-तुम

मन का मधु किंशुक
जले नहीं मीत आ !
बरखा से झहर जाएं हम–तुम

पुरवा के झेले हैं
कितने ही ताने
गमके हैं रात–रात
मन के सिवाने

वसंत के सुशान्त क्षण
तपे नहीं मीत आ !
धूपों से ठहर जाएं हम–तुम

इन्द्रधनु लहरे या
गुलमोहर फूले
अपना स्वर–सम्मोहन
पात–पात झूले

कसे हुए मृदंग से
बजें नहीं मीत आ !
पुलकों से संवर जाएं हम–तुम

(16.03.2000)

◆◆

सबसे पहले तुमको

एक नीला सन्नाटा जब घेरे
मन सबसे पहले तुमको टेरे

अपना ही एकांत लगता बेअसर
गंध बर्फ-सी जम जाती है देह भर

बीनों पर जब झूमते संपेरे
मन सबसे पहले तुमको टेरे

स्पर्शों की नदी तैर आयी हवा
लौट रही है तट पर लहरों की जवा

बजती जब वंशी सांझ-सबेरे
मन सबसे पहले तुमको टेरे

आंचल जैसे लहरते रेशम के
धूप-चांदनी ठहर गयी थम के

जब भी नभ हरी घास को हेरे
मन सबसे पहले तुमको टेरे

(02.06.'71)

◆◆

अपना प्यार

ढूँढ़ते हैं हवाओं में हम
वही अपना प्यार

चिड़ियों की पाँख से हरे
कनेरों से दिन
प्रेम कविता की कथाओं से
विंधे पल-छिन
जलों का वह सीपिया संगम
पीछे हँसी पहने धार

उपनिषद् के छन्द पहने
धूपवाले गाँव
पतली पगडंडियों के
धूल ओढे पाँव
हो गया है अब कहीं से कम
वह उफनता ज्वार

भोर की लाली तलाशे
गुमसुम झुके हुए
मेज, कमरे, मुंडेरों पर
थके दिन रूके हुए
आँधियों से छन हुए निर्मम
कथाओं में रहा कँचनार

(15.04.'83)

◆◆

पत्ते झड़े हुए

बरसों से फूल-पात हाथ में पड़े हुए

आँखों में उलझे कुछ धागे
साये ही साये हैं आगे
पत्थर के गमलों में कल से पत्ते झड़े हुए

जलती सुबह, सुलगती शामें
रिश्तों की बारूद हवा में
मेघ-वनों के इन्द्रधनुष जूड़े में जड़े हुए

शोर-शराबों में दिन डूबा
चाँद अँधेरे का मनसूबा
कोहरे की परछाईं में कुछ सपने तिरे हुए

(07.06.'98)

◆◆

भीतर-भीतर आग

भीतर-भीतर आग बहुत है
बाहर तो सन्नाटा है

सड़कें सिकुड़ गयी हैं भय से
देख खून की छापें
दहशत में डूबे हैं पत्ते
अंधकार भी काँपे

किसने है यह आग लगायी
जंगल किसने काटा है

घर तक पहुँचानेवाले वे
धमकाते हैं राहों में
जाने कब सींघा बज जाये
तीर चुभेंगे बाँहों में

कहने को है तेज रोशनी
कालिख को ही बाँटा है

कभी धूप ने, कभी छाँव ने
छीनी है कोमलता
एक करोटनवाला गमला
रहा सदा ही जलता

खुशियों वाले दिन पर लगता
लगा किसी का चाँटा है

(02.02.'94)

◆◆

गाँव नहीं छोड़ा

दरवाजे का आम-आँवला
घर का तुलसी-चौरा
इसीलिये अम्मा ने अपना
गाँव नहीं छोड़ा

पेबन्दों को सिलते–
मन से उदास होती
भैया के आने की खूशबू–
भर से खुश होती
भाभी ने कितना समझाया
मान नहीं तोड़ा

कभी-कभी बजते घर में
घुंघरू से पोती-पोते
छोटे-छोटे बँटे बताशे
हाथों के सुख होते
घर की खातिर लुटा दिया सब
रखा न कुछ थोड़ा

गहना बनने वाले दिन में
खेत खरीद लिये

बाबूजी के कहे हुए सब
सपने संग लिये
सह न सकी जब खूँटे पर से
गया बैल जोड़ा
इसीलिए अम्मा ने अपना
गाँव नहीं छोड़ा

(06.12.'98)

◆◆

हरे-भरे खेतों के गाँव

बार-बार हमको बुलाती है,
फसलों की गंध–गुंथी छांव
चलो सुनयना, हम दोनों चलें
हरे-भरे खेतों के गांव

फसलों के बीच तुम्हारा ही चेहरा
ममता भरी तेरी आंखें
कोमल बांहें ऐसे खुले जैसे–
प्यार भरी चिड़ियों की पांखें
मुहरें लगी तेरी आंखों की
कढ़ती जैसे अरिपन–ठांव

अपनी बेटी-सी कोमल हरियाली
सामने किलकती खड़ी
बैठ घूम आती हवाओं के यान पर
सपने से भी लगती बड़ी
आकाश-सी नीली पगड़ी में
बाबू संभाले हुए दांव

अनगये लोक की बातें न जानें
यह जिनगी लगती भली

तेरा घर–मेरा घर अपना घर गूंजे
रचती है माटी कजली
दुखों के धोये उत्सव उजाले
लछमी बसे तेरे पांव

(05.09.'85)

◆◆

आँखों में घर

कटे धान के खेतों में
फिर-फिर आई चिड़िया
दाने जो झर गये चुनेगी
अपने मन की कथा कहेगी
सीधी धूप-हवा से बातें
करने को वह रूकी रहेगी
हलवाहा के आते ही
उफनी जैसे नदिया

रोम-रोम आँखों से भर के
मौसम को तितली सा करके
पंखों पर आकाश उठाये
खुद को धुनी रूई सा धर के
मुख आकाश की ओर किये
ले उड़ी समय का पहिया

चिड़िया की आँखों में घर है
कहीं पठार कहीं सागर है
ले-देकर इस धरती पर ही
इससे ही भरना गागर है
चिड़िया से ही धरती का सुख
सुख से उमग रहा है दरिया

(06.12.'98)

◆◆

एक प्यार

मुझमें अपनापन बोता है
साँझ-सकारे यह मेरा घर

उगते ही सूरज के
रोशनदान बाँटते ढेर उजाले
धूपों के परदे में
खिल-खिल उठते हैं खिड़की के जाले
चिड़ियों का जैसे खोंता है
झिन-झिन बजता है कोई स्वर

एक हँसी आँगन से उठती
और फैल जाती तारों पर
मन की सारी बात लिखी हो
जैसे उजली दीवारों पर
एक प्यार सबकुछ होता है
जिससे डरते हैं सारे डर

दरवाजे पर साँकल माँ की
आशीषों से भरी उंगलियाँ
पिता कि जैसे बाग–फूटती
एक स्वप्न में सौ-सौ कलियाँ
जहाँ परायापन रोता है
लुक-छिप खुशी बाँटता मन भर

(05.02.'98)

◆◆

ठहरा हुआ बचपन

सघन छायादार सड़कें
काँपता है भोर का कुहरा
मन अपना एक पल को भी
नहीं अपने पास तब ठहरा

याद आये पिता–
अपना झील सा ठहरा हुआ बचपन
मूंगों की फलियाँ–
पहने गाये उजले हरे खेत-वन
एक उजला स्वप्न कौंधा
रोशनी का चौतरफा पहरा

बिन धुँआते छप्परों के घर
आँख में आँजे हुए अगहन
याद आये सरसराते हवा में
हिलते हुए से ईख जैसे दिन
मछलियों की आँख में चमका
पोखरों का अतल जल गहरा

घुंघराले केश में दमकते
कसकर बाँधे हुए रिबन
याद आया लड़की का ताल में उझकना

फिर देखना दर्पण
यादों के मेले में एक मन फँसा
कभी परचम बना फहरा

(15.07.'98)

◆◆

अपनापन

यह अपनापन प्यार तुम्हारा
मुझको जीने के सुख देता

कटे धान के खेतों में जब
चिड़िया दाना चुगने आती
ओसायी धूपों में अपनी
सहज प्रार्थनाएँ बुन जाती

आंगन में हर बार तुम्हारा
गंध-परस हर सब दुख लेता

बागों में जब बौर फूटते
कलियों की आँखों में पानी
बेलपत्र पर चन्दन जैसे
लगे अपूरब तुतली बानी

तुम सा ही घर-बार तुम्हारा
फँसी नाव को हरदम खेता

तुमसे ही तुमको ले-देकर
नयन नेह के झरनोंवाले
कोई सगुन उचारे रह-रह
हाथों जुड़े मोतियोंवाले

सरबस मानिक-लाल तुम्हारा
बदले मन के मोती लेता

(05.12.'98)

◆◆

सूर्य का उदय

जगा हुआ ज्योति की प्रतीक्षा में घर
तुम आये तभी हुआ सूर्य का उदय.

तुम्हारी हँसी पहन कर हुए
दुहरे घर-आँगन
चिड़ियों की पाँखों पर अंकित
तितलियों का मन

खिड़कियाँ–दलान हुए धूप के नगर
पलकें जो खुलीं, हुई हर्ष की विजय

चंदन में सनी हुई गमकी
गेरू की लिपियाँ
दीवारों पर सजी हुई
ज्यों दीपावलियाँ

आशीषों में ढले अक्षत-से अक्षर
झरती हैं बाँहों के छन्दों से लय

पुरखों के पुण्य फले
जागा माँ का सुहाग
फूटे छः दांतों वाली–
मुस्कानों के विहाग

उजली छुअन जैसे सुखों के लगे हों पर
अपनी धरती पर पहले न था निलय

उत्सव-सी रचती है
धूप-हवा मिल के
सब अभाव हुए जाते
अब बीते कल के

तुम अपूर्व, अक्षय वरदान हो अमर
तुमसे हरे हुए हम हर हाल में तनय

(19.09.'91)

◆◆

सूर्य को प्रणाम

हाथ दोनों जोड़ते हुए
सूर्य को प्रणाम हम करें

एक सूर्य लाने गए बाबा
आज तक लौटकर नहीं आये
एक बीज लाने गये काका
पेड़ की तरह रहे अनगाये

छोटी इच्छाएं हिलकोरते हुए
धरा को प्रणाम हम करें

चक्कियाँ चलाती अपनी मांएं
आटा-आटा होकर रह गयीं
जोहती रहीं कुछ उनकी आंखें
काठ के बुरादे-सी ढह गईं

आओ, अपना पथ मोड़ते हुए
नदी को प्रणाम हम करें

धुआं-धुआं हुए सुलगे भाई
मौसम को आग बांटते
अपने हाथों अपने को गढ़ने
अँधेरे के गाछ काटते
झरने की तरह पर्वत फोड़ते हुए
फूल को प्रणाम हम करें

(03.10.'84)

◆◆

धूप-तितलियों वाले दिन

एक अधूरा गीत
अंतरा लिये सुलगता है
बरगद की छाँहों में जब
उठती मृदंग की थापें
बीच गाँव के टोले में
रचती हल्दी की छापें
कोई मीठा परस हवा का
मन में जगता है

धूप-तितलियों वाले दिन
कब बीत गये होते
पानी की सीढ़ियाँ नापते
रीत गये होते
पर उदास मन में अब भी
एक सूरज उगता है

दूर उड़ाने भरने वाली
चिड़ियों की आँखें
बान लगे हिरना को जैसे
हिरनी गुमसुम ताके
जो बीता दिन में देखा
एक सपना लगता है

(05.12.'98)

◆◆

पाखी लौटेंगे

बीते दिन बहुरेंगे
पाखी लौटेंगे
इच्छाओं से भरी तांबई होगी कोंपल
धूप-तितलियों के मेले फिर होंगे पल-पल
रोये मन सँवरेंगे
पाखी लौटेंगे
मंत्र उचारेंगे फिर भौंरे डाल-डाल पर
पंचतंत्र की कथा सुने शालीना डाले हाथ गाल पर
सोये घन लहरेंगे
पाखी लौटेंगे
गीत की पहली पाँती जैसा यह अपनापन
बार-बार भेजेगा अपना नेह-निमंत्रण
खोये धन दुहरेंगे
पाखी लौटेंगे

(06.12.'98)

◆◆

गीत कभी का गाया

अँधेरे के जाते ही दीखने लगा
पानी पर किरनों का प्यार

भूलता जाता है गीत कभी का गाया
कभी की सुनी हुई बात याद आती
नीलकमल बिखराता पंखुड़ियाँ जल में
यादों की धीमी बरसात याद आती

बलुआहे मन पर दीखने लगा
गूलर के फूल का पठार

नींदों में कभी ओस कभी धूप बढती
मौसम के नाम तक भूल जाते
इतना धन, इतना सुख-एक अपनापन
कितने ही खातों में रोज लिखे आते

खानों के मालिक की बात हो मजूरों से
ऐसी अपनी हवा बहती है बार-बार

बचपन के देखे घर-गाँव याद आते
पोखर में तालमखानों के किस्से
गेहूँ के ओसाये खेतों के बीच कहीं
अभी भी जगे होंगे खुशियों के हिस्से

उंगली में मटर और बथुआ के साग हरे
शहरों के इस उदास क्षण को देते सँवार

(24.01.'99)

◆◆

सपने लौटे हैं

धूल की तरह उड़ी हवा
सपनों से नींद उड़ गई

धरती पर बड़ी भली लगती थी
आशा से भरी हुई आँखें
प्रकृति और धूप में वसंत की
जुड़ जाती चिड़ियों की पाँखें
कागज गीला नहीं हुआ
थकी हुई राह मुड़ गई

दूर तलक आँखों में उसकी
सुगंध थी अगले मौसम की
रोते बच्चों की लाल पलकों सी
हौसले अधिक, उदासी कम थी
यादों में फूलती जवा
साँस में उदास जुड़ गई

बैठकर ट्रेन की छतों पर
सपने लौटे हैं गाँवों में
यात्रा की थकान और खुशियाँ
कहाँ-कहाँ बँटी किन पड़ावों में
मन जैसे जलता हुआ तवा
अथाह एक सुरंग सुरमयी

(31.03.'99)

◆◆

शरद ऋतु का आकाश

शरद ऋतु का यह आकाश
तुम्हारी आंखों-सा सुन्दर है

यादों में जगने लगता है
अपना छोटा गांव
वर्षा–बीच भींगी-भींगी-सी
धूप नहाती छांव

पंखुड़ियों में बन्द वातास
तुम्हारी गतियों-सी मन्थर है

जैसे परबत की छाती से
कोई झरना फूटे
अन्तर की करूणा छौनों-सी
धरती पर यों छूटे

फूल पर उड़े कास के हास
तुम्हारी हंसियों के आखर हैं

गांव सिवाने के मंदिर को
छूती-सी धार नहाये
जैसें हो कोई अग्निमित्र
मालविका को सपनाये

धान के टूसे पर चौमास
तुम्हारी बातों-सा मनहर है

(25.02.'88)

◆◆

साथ मेरे चल रही

साथ मेरे चल रही हैं कांपते क्षण की घटाएं
गीत का मन बन गयी हैं आज पश्चिम की हवाएं
कहीं उलझे रह गये हैं
मौन के स्वर-तार मेरे
बांसुरी भरमा गयी है
आज क्षण दो-चार मेरे
सिहरते ये गीत मेरे क्या पता कब पहुंच पाएं,
आज अपनी खुशी से ही सपन सारे बिखर जाएं
कहीं सिहरन बन गये हैं
नभ-नयन-मन के सितारे
आज बासी हो गये हैं
फूल आंचल भर पसारे
सांझ भी गहरा गयी है समय के घट छलक आएं
सिन्धु भी शरमा गया है, आज संयम मचल गाएं
रात की निर्बन्ध छवि में
इन्द्रधनुषी छांह तेरी
मिल गयी है उस क्षितिज पर
बांह थामे सांस मेरी
दृष्टियों में बंध गयी हैं आज अंजन–सी दिशाएं
धड़कनों में बज रहे मादल कि सौ फागुन उगाएं

(15.02.'83)

◆◆

तुमको चाहा कितना

तुमको चाहा कितना-कितना मैंने अपनी चाह में
सूरजमुखी खेत में झूमे, फसलें खड़ी गवाह में

रूकता नहीं प्यार, प्यार यह
नदी, झील पर्वत-सा
मीठा-मीठा लगे रात-दिन
शहद-घुले शरबत-सा

लाज का गहना पहने तेरी
आँखें बसी निगाह में

इन हाथों से रची रोटियाँ
प्यारी पकवानों-सी
लहू उगाती क्षण-क्षण मुझ में
ममता वरदानों-सी

धूप-हवा-पानी इस घर के
घूमे भली सलाह में

अबके काट रहा जब मैं खुद
अपने हाथों फसलें
परस तुम्हारें हाथों का भी
कहता मिलकर हंस लें

पीला फूल कनेर एक खिलता
है तो दिन–माह में

बाजूबंद नहीं है तो क्या
मुक्त हवा तो है
देने को अपने हिस्से में
रक्तजवा तो है

साथ-साथ जीते-मरते हें
रहते इसी उछाह में

(21.09.'84)

◆◆

पैर की छाप

नींद में भी सुनाई पड़े
एक हंसी खिलखिलाती हुई
कत्थई गोद के फूल-सी
गंध भीनी नहाती हुई

आंख खुलते ही सूरज जगे
नील झीने चंदोवे तले
एक सुकुमार टहनी जुही
लोरियों के सहारे हिले

एक नदी घर में उगती लगे
तोतली जिद बहाती हुई

पैर की छाप घर में लिखी
जलकमल ज्यों गिरे डाल से
दूधिया दांत ऐसे लगें
दो सितारे ढंके जाल से

या हरसिंगार झरते हुए
दूर लौ झिलमिलाती हुई

सरसों की अंकुराती देह
गीत-घुली दो मीन आंखें

नेह का बोल बोले, खुले
चिड़ियों-सी बांहों की पांखें

इस तरह लोकधुन में पगी
नींद भी गुनगुनाती हुई

(18.08.'89)

◆◆

तुम एक सघन पेड़ हो

पितरों के पुन कोंपल-से फूटे–
छोटे शहर के अपने इस घर में

इन्तजार धूपिया हवाओं में
खिड़कियों की जाली में चित्र लिखे
छोटी चिड़िया की खुलती पांखों से
आकाश के आंगन में अल्पना दिखे

नरम रूई-सी हथेली सहलाएं
टेर उत्सव के सरस स्वर में

आगे बढ़ते पथ के पांवों से
उठे हुए हाथों से हवाओं में
नये पत्तों की लहरों में बजती हो
कब से रखी हुई वंशी गांवों में

सुबह के धूप-गीत सपनाये
तुम एक सघन पेड़ हो मेरे घर में

गीतों में जलतरंग बजता है
मिट्टी के घड़ों में जैसे पानी
कौड़ियां रखते जैसे गूंजती
चूड़ियां हों सुआपंख–धानी

भावी इतिहास सिर उठाये–
जगते हैं मेड़ अधराती गजर में (19.06.'89)

◆◆

धीरे पांव धरो

धीरे पांव धरो !
आज पिता-गृह धन्य हुआ है
मंत्र-सदृश उचरो !

तुम अम्मा के घर की देहरी
बाबूजी की शान
तुम भाभी के जूड़े का पिन
भैया की मुस्कान

पोर-पोर आंगन के
लाल महावर-सी निखरो !
धीरे पांव धरो !

तेरी हंसी पहनकर गाये
फूलों की टहनी
तुम अन्तर की भाषा में
सपनों के सूत बनी

आंचल भरकर दूब–धान
सिन्दूरी नमन करो !
धीरे पांव धरो !

जीवन की अल्पना रचेंगे
सुख के मीन-मयूर
लहठीवाले हाथ तुम्हारे
माथे का सिन्दूर

पितरों के गौरी-गणेश को
पूजो, वरन करो !
धीरे पांव धरो !

(23.07.'89)

◆◆

सन्दूरी सांझ

सिन्दूरी यह सांझ, कुमकुमों-सा बादल
तन-मन भरा गुलाल, फूटती है कोंपल

अंगों में दहके गुलमोहर
सौ वसन्त घेरे
आंखों में फूला पलाश-वन
सूरज को हेरे

शहनाई की गूंज, थिरकता है मादल

द्वार सजे रंगोली, मन में
हिलती डाल जुही की
फैल गयीं आंखें अंबर की
लख सौगात मही की

रस के है भरे कलश और केसर, काजल

अपनी छवि पर रीझ रहा
अनुराग भरा दर्पण
मंद समीर बंधे आंचल
में हरसिंगार-सा मन

लोकगीत-सा रचा नयन का गंगाजल

सांसों में विश्वास, आंख में
रंग भरा चूनर का
झुका गगन, कुछ उठी धरा
अनुबंध नये घर का

एक रात रतनार प्रतीक्षा का शतदल

(19.05.'90)

◆◆

फूटते धान सा

कनक-थाल में दीप चाँद का
जलता तेरे नाम का
तुम मेरे भविष्य के आखर
दर्पण हो दिनमान का

तेरी हँसी भुला देगी
जीवन के किसी विराग को
तुमसे घर नन्दन बन जाये
तिलक रचे अभिमान का

पिता-सरीखे दिन बाँटेंगे
आशीषों की छाँह तुझे
माँ का कोमल प्यार कहेगा
अर्थ सुरीले गान का

शत-शत शरत जियो तुम ईशम
सूर्य-चन्द्र से द़ीपित हो
मौसम की हरियाली तुमको
रचे फूटते धान सा

◆◆

गीत गाये देहरी

कोमल पाँव धरो
फूटे चन्दन की गंध
गीत गाये देहरी

कई जनम के पुण्य
आज फूले पुरखों के
अंगड़ाई ले जागे हैं
सपने बरखों के
अरूणिम नयन वरो

ऋचा-स्वर गूंजें मन्द
द्वार हिरना ठहरी

सौ-सौ कमल-ताल में
जैसे पंखुड़ियाँ खोले
लहठी वाले हाथ ये जब
परिचय-प्रणाम घोले
मंत्र-मुग्ध करो

(11.12.'90) बोये धूप-हवा मकरंद
फुनगियों से उतरी

जीवन भर की पूंजी ये
क्षण सुख के पहने
रचे स्नेह सुकुमार
सुहागन तेरे गहने
सीपी-सपन भरो

मुखर घर-आँगन छंद
जैसे वर्षा झहरी

(19.07.'91)

◆◆

नदियाँ इंगुर की

इतनी सर्द हवाओं में भी
खुशबू का अहसास
अपना कोई प्यारा जैसे
इस पल इतने पास

इंगुर की नदियाँ बहती हों
मन में आँखों में
प्यार बाँधकर उड़ती चिड़िया
नीली पाँखों में

हरियाली के दर्पण दीखा
'आनन ओप उजास'

इतने यतन जुगाये तब से
भीतर के अंकुर को
छाया वह छतनार समेटेगी
पीले पतझड़ को

मैले कभी न होंगे वन के
रंगारंग पलास

धूपों से तितलियाँ बनाकर
उड़ते संग हवा के
क्षण वे फिर आते हैं चुपके
धीरे पाँव दबा के

भरी नींद में सपनाते हैं
वन के आक-जवास

(25.02.2002)

◆◆

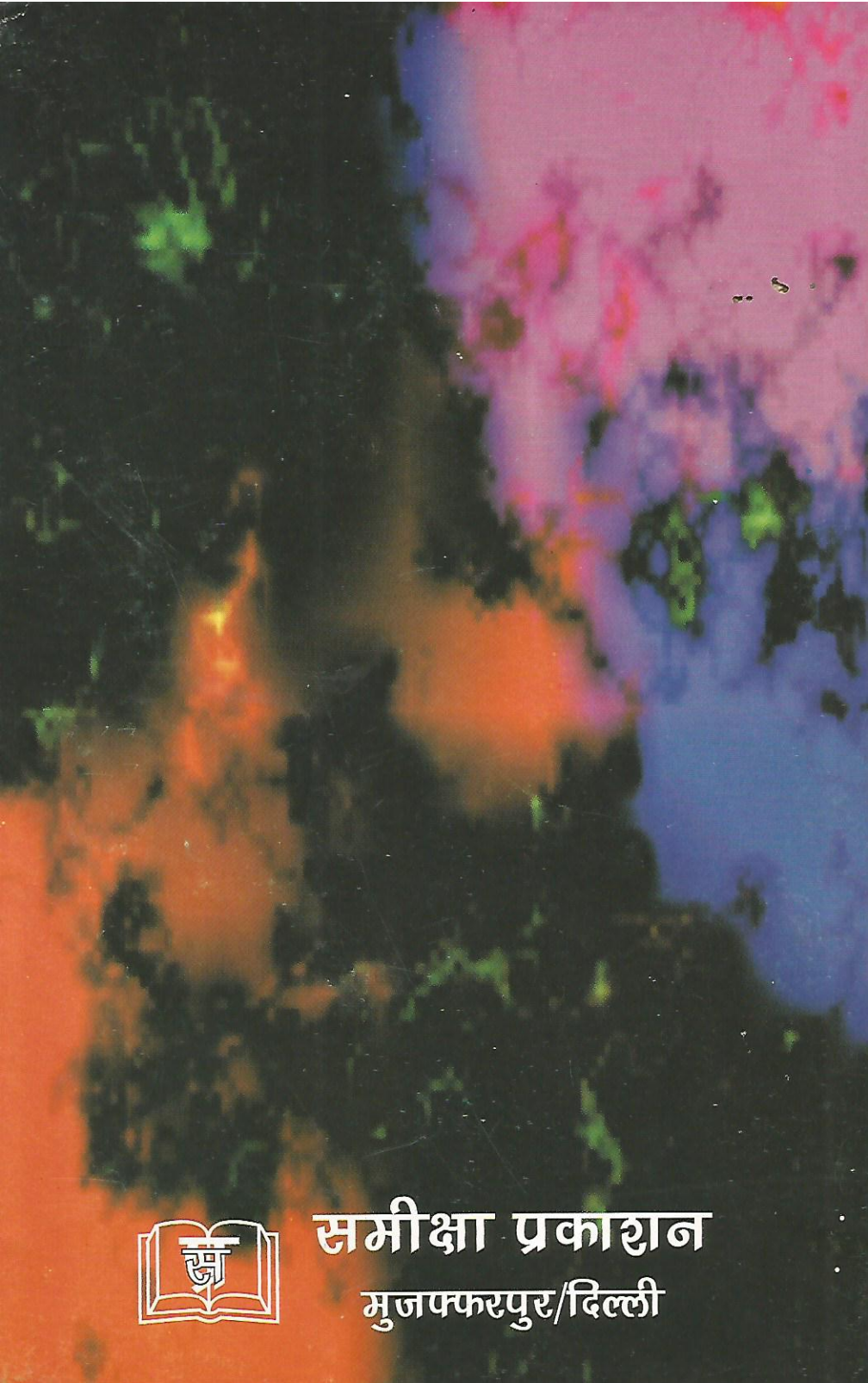

समीक्षा प्रकाशन
मुजफ्फरपुर/दिल्ली